मामूली चीज़ों का देवता : कुछ सम्मतियाँ

विश्व परिदृश्य पर चर्चित अरुंधति रॉय की औपन्यासिक कृति 'मामूली चीजों का देवता' भारतीय रचनात्मकता की अपूर्व अभिव्यक्ति और उपलब्धि है। नीलाभ द्वारा प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद पाठक को मूल की सन्तुष्टि देता है। —कृष्णा सोबती

अरुंधति रॉय का उपन्यास 'मामूली चीजों का देवता' मेरी दृष्टि में एक असाधारण, 'गैर-मामूली' कथा-कृति है। वह एक सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियो मे उमगी ऐसी दारुण प्रेमकथा है, जो छोटी अदृश्य चीज़ो के बीच जन्म लेती हुई एक झंझावात की तरह कुछ लोगों की जिन्दगी को हमेशा के लिए बदल देती है...भाषा का मांसल, ऐन्द्रिक सौन्दर्य केरल के घने झुरमुटों, तालों, नदियों की तरह समूची कथा के भीतर एक संगीत की तरह प्रवाहित होता रहता है। —निर्मल वर्मा

भारतीय यथार्थ की गहन, श्रेष्ठ प्रस्तुति—फतासी के जादू को छूती हुई... पढ़ चुकने पर नए क़िस्म की तीक्ष्णता और गीतात्मक त्रासदी की असामान्य अनुभूति .. —श्रीलाल शुक्ल

अरुंधति रॉय आज सारे संसार के समकालीन साहित्य मे प्रसिद्ध-प्रतिष्ठित नाम है। दशकों बाद वे अंग्रेज़ी की एक ऐसी भारतीय लेखिका है जिन्होने भारतीय सच्चाई के ब्योरों को जतन और संवेदनशीलता से बुनकर एक उपन्यास रचा है, जो भारतीय जीवन का एक बेहद स्थानिक और इसलिए सार्वभौम चित्राकन करता हे, और अंग्रेज़ी में भारतीय आख्यान की नयी सम्भावना प्रगट करता है। —अशोक वाजपेयी

अरुंधति रॉय की किस्सागोई अचरज में डालती है, उनका यथार्थ बोध भी चमत्कृत करता है, बल्कि यह उपन्यास हमारी भाषिक चेतना में एक स्थूल और इकहरे मुहावरे की तरह बसे यथार्थ शब्द को जैसे चकनाचूर कर उसे उसका वास्तविक अर्थ प्रदान करता है।
—प्रियदर्शन, *हंस*

'द गॉड ऑफ स्माल थिंग्स' में सब कुछ है : धरती से आती प्रतिध्वनियाँ, पुकारें और चीखे। और इससे भी ज्यादा अहम जो चीज है—बौद्धिक साहस। यह सिर्फ एक असाधारण उपन्यास ही नही है, मानवी पूर्वाभास और अपरिहार्यता का एक खुलता हुआ स्प्रिंग है। कहने की जरूरत नहीं है कि यह एक बेमिसाल कृति है।
—राजगोपाल निदम्बूर, *संडे आब्जर्वर*

'द गॉड ऑफ स्माल थिंग्स' की विशिष्टता यह है कि यह दिल और दिमाग़ दोनो को एक साथ अपील करता है। विलक्षण और जटिल—तो भी पाठक को हँसाने और आखिरकार रुलाने में सक्षम। एक अनुपम कृति। —विलियम डेलरिम्पल, *हार्पर्स एंड क्वीन*

जादू, रहस्य और उदासी का ऐसा प्रस्तुतिकरण कि इस पाठक ने आखिरी पन्ना पढ़ने के बाद इसे बाकायदा और फौरन दुबारा पढ़ने का फैसला किया। अद्भुत रूप से विस्मयकारी उपन्यास।
—डेर्ड्रे डोनाह्यू, *यूएसए टुडे*

'यह पुस्तक अपने सब वादे पूरे करती है।'

बुकर पुरस्कार संस्तुति, 14 अक्तूबर, 1997

अरुंधति रॉय

मामूली चीज़ों का देवता

अनुवाद

नीलाभ

राजकमल पेपरबैक्स

पहला पुस्तकालय संस्करण
2004 में प्रकाशित

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 2005
पहली आवृत्ति : 2006

© अरुंधति रॉय
हिन्दी अनुवाद : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110 002
वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ईमेल : info@rajkamalprakashan.com
द्वारा प्रकाशित

वी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 95.00

आवरण-छाया : संजीव सेठ

MAMOOLI CHEEZON KA DEVATA
by Arundhati Roy

ISBN : 81-267-1018-7

आभार

प्रदीप कृशन, मेरे सबसे कड़े आलोचक, सबसे नज़दीकी दोस्त, मेरे प्यारे। तुम्हारे बिना यह किताब यह किताब न हो पाती।

पिया और मितवा को, मेरी होने के लिए।

आराधना, अर्जुन, बेटे, चन्दू, कार्लो, गोलक, इन्दु, जोआन्ना, नाहीद, फ़िलिप, संजू, वीना और विवेक को जो यह किताब लिखे जाने के वर्षों में मुझसे मिलते रहे।

पंकज मिश्रा को, इसे दुनिया की यात्रा पर रवाना करने के लिए।

आलोक राय और शोमित मित्तर को, ऐसे पाठक होने के लिए, जिनका सपना लेखक पालते हैं।

डेविड गॉडविन—फ्लाइंग एजेंट, गाइड और दोस्त को, उस आवेग-प्रेरित भारत यात्रा के लिए। सागर के जल को विभाजित कर राह बनाने के लिए।

नीलू, सुषमा और कृष्णन को, मेरा जोश बनाये रखने और मेरी टाँगों की नसों को काम करने लायक़ बनाये रखने के लिए।

और अन्त में, लेकिन बहुत गहराई से दादी और दादा को। उनके प्यार और सहारे के लिए।

धन्यवाद।

आलोक राय को (पुनः) हिन्दी अनुवाद को धैर्य और सूक्ष्मता के साथ बढ़ाते ले चलने की ख़ातिर कई महीने ख़र्च करने के लिए।

नीलाभ को—जिनकी प्रतिबद्धता और कौशल के चलते यह अनुवाद मेरे लिए असीम प्रसन्नता बन गया है।

मेरी रॉय के लिए
जिन्होंने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया
जिन्होंने सबके सामने उन्हें टोकने
से पहले मुझे 'माफ़ कीजिए' कहना सिखाया
जिन्होंने मुझसे इतना प्यार किया कि मुझे जाने की
छूट दी

एल के सी के लिए, जो मेरी तरह, बच निकला

फिर कभी एक कहानी इस तरह बयान नहीं की जा सकेगी
कि वही अकेली कहानी है।

जॉन बर्जर

अनुक्रम

1. पैराडाइज़ अचार और मुरब्बे 13
2. पप्पाची का पतंगा 42
3. बिग मैन द लालटेन, इस्मॉल मैन द मोमबत्ती 86
4. अभिलाष टॉकीज़ 91
5. धरती पर स्वर्ग 116
6. कोचीन के कंगारू 126
7. ज्ञान अभ्यास पुस्तिकाएँ 142
8. स्वागत है तुम्हारा, प्यारी सोफ़ी मोल 151
9. श्रीमती पिल्ले, श्रीमती ईपन, श्रीमती राजगोपालन 170
10. नाव में नदी 175
11. मामूली चीज़ों का देवता 194
12. कोच्चु थोम्मन 205
13. आशावादी और निराशावादी 213
14. श्रम संघर्ष है 238
15. पार उतराई 254
16. कुछ घण्टों बाद 256
17. कोचीन हार्बर टर्मिनस 259
18. इतिहास-घर 267
19. अम्मू को बचाना 275
20. मद्रास मेल 283
21. जीने की क़ीमत 289

पैराडाइज़ अचार और मुरब्बे

आयमनम में मई एक गर्म, गुमसुम महीना होता है। दिन लम्बे, उन्मन और उमस-भरे होते हैं। नदी सिकुड़-सिमट जाती है और काले कौए थिर, धूसर-हरे पेड़ों में दमकते आमों को खा-खाकर अघाते रहते हैं। लाल-लाल केले पकते हैं। कटहल फट पड़ते हैं। लम्पट भँवरे फलों की महक-लदी हवा में बेमक़सद बेवकूफ़ी से गुनगुनाते हैं। फिर वे खिड़कियों के साफ़-शफ़्फ़ाफ़ शीशों से टकराकर अचेत हो, धूप में अपनी स्तम्भित स्थूलता के साथ स्वर्ग सिधार जाते हैं।

रातें साफ़ होती हैं, मगर आलस और अवसाद-भरी उम्मीद से रची-बसीं।

लेकिन जून के शुरू में दक्षिण पश्चिमी मॉनसून टूट पड़ती है और फिर हवा और पानी के तीन महीने आते हैं और उनके बीच तीखी, चमकदार धूप की छोटी-छोटी पारियाँ, जिन्हें रोमांचित बच्चे खेलने के लिए झपट लेते हैं। इर्द-गिर्द के देहाती इलाके पर एक निर्लज्ज हरियाली छा जाती है। टैपियोका की बाड़ों के जड़ पकड़ने और फूलने के साथ ही मेड़ें ओझल हो जाती हैं। ईंट की दीवारों पर काई का हरापन चढ़ जाता है। काली मिर्च की लतरें बिजली के खम्भों पर साँप की तरह चढ़ती नज़र आती हैं। जंगली लताएँ मुर्रम के कँकरीले किनारों से फूट कर पानी में डूबी सड़कों पर पसर जाती हैं। बाज़ारों में नावें चलने लगती हैं। और सड़कों पर पी.डब्ल्यू.डी. के गड्ढों में भरे पानी के डबरों में छोटी-छोटी मछलियाँ नमूदार होती हैं।

वर्षा हो रही थी जब राहेल आयमनम लौटी। तिरछी, रुपहली रस्सियाँ कच्ची मिट्टी को गोलियों की बौछार की तरह खूँदती हुई उस पर बरस रही थीं। पहाड़ी पर बने पुराने घर ने अपनी ढलवाँ, तिकोनी छत किसी नीची टोपी की तरह कानों को ढँकते हुए पहन रखी थी। दीवारें, जिन पर काई की धारियाँ थीं, नरम हो गयी थीं और ज़मीन से ऊपर को चढ़ने वाली सीलन से कुछ-कुछ फूल आयी थीं। जंगल बनी बेतरतीब बगिया नन्हे-नन्हे जीवों की खुसफुस और दौड़-भाग से भरी हुई थी। झाड़ियों में दुबका एक धामन अपनी देह एक चमकते हुए पत्थर से रगड़ रहा था। पीले, प्रणयाकांक्षी मेंढक काई-भरे पोखर में संगियों की तलाश करते, तैरते फिर रहे थे। एक भीगा नेवला मकान को जाने वाले, पत्तों से अटे, रास्ते पर कौंधता हुआ निकल गया।

मकान अपने आप में ख़ाली लग रहा था। खिड़कियाँ-दरवाज़े बन्द थे। सामने का बरामदा वीरान था। साज-सज्जा रहित। लेकिन क्रोम के चमकते टेल-फ़िनों वाली,

आसमानी रंग की प्लिमथ गाड़ी अब भी बाहर खड़ी थी और घर के भीतर बेबी कॉचम्मा अब भी जीवित थी।

वह राहेल की सबसे छोटी नानी-बुआ थी। उसके नाना की छोटी बहन। नाम तो उसका दरअसल नवोमी था, नवोमी आइप, लेकिन सब उसको बेबी कह कर बुलाते थे। बेबी कॉचम्मा वह तब बनी, जब वह इतनी बड़ी हो गयी कि बुआ बन सके। वैसे, राहेल उससे नहीं मिलने आयी थी। न नातिन को इस बारे में कोई भ्रम था, न नानी-बुआ को। राहेल तो दरअसल अपने भाई एस्ता को देखने आयी थी। वे दो-डिम्बों-वाले जुड़वाँ थे। डॉक्टरों ने उन्हें 'डाइज़ीगॉटिक' कहा था। दो अलग-अलग, लेकिन एक ही समय में गर्भ धारण करने वाले, डिम्बों से जन्मे। एस्ता—एस्ताप्पेन—अठारह मिनट बड़ा था।

वे कभी एक-जैसे नहीं लगे—एस्ता और राहेल, और जब वे बच्चे थे, सींकिया बाँहों और सपाट सीनो वाले, पेट के कीड़ों से परेशान, एल्विस प्रेस्ली मार्का बुल्ले सजाये, तब भी आयमनम वाले घर पर चन्दे के लिए अक्सर आने वाले सीरियन ऑर्थोडॉक्स पादरियों या दाँत चियारे रिश्तेदारों की तरफ से 'कौन कौन है भला ?' या 'पहचानो तो सही' कभी नहीं सुनायी पड़ा।

उलझेरा तो कहीं ज़्यादा गहरी, कहीं ज़्यादा गोपनीय जगह में छुपा हुआ था।

उन आरम्भिक, बिखराव-भरे अनाकार वर्षों में, जब स्मृतियाँ बस शुरू ही हुई थीं, जब ज़िन्दगी अन्तहीन-प्रारम्भों से भरी थी और सब कुछ हमेशा-रहने-वाला था, एस्ताप्पेन और राहेल खुद को इकट्ठा 'मै' करके सोचते और अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में 'हम' या 'हमे'। मानो वे सियामी जुडवों की कोई दुर्लभ नस्ल हों। दो शरीर, मगर एक जान।

अब, इतने वर्षों बाद, राहेल को याद आता है, कैसे वह एक रात एस्ताप्पेन के किसी दिलचस्प सपने पर हँसते हुए जागी थी।

उसके पास कुछ और स्मृतियाँ भी है, जिन्हें सँजोये रखने का उसे कोई अधिकार नहीं है।

मसलन, उसे याद है (हालाँकि वह वहाँ मौजूद नहीं थी) कि सोडा-लेमन वाले ने अभिलाष टॉकीज़ में एस्ता के साथ क्या किया था। उसे टमाटर के उन सैंडविचों का स्वाद याद है—*एस्ता* के सैंडविचो का—जो *एस्ता* ने मद्रास मेल से मद्रास जाते हुए खाये थे।

और ये तो महज़ छोटी-छोटी चीज़े है।

जो भी हो, अब वह एस्ता और राहेल को उन्हे करके सोचती है, क्योंकि अलग-अलग दोनों-के-दोनों अब वह नहीं रहे जो वे थे या कभी सोचते थे कि *वे होंगे।*

उनकी ज़िन्दगियो की अब एक सूरत-शक्ल है, क़द-बुत है। एस्ता की अपनी और राहेल की अपनी।

छोर, सरहदें, चहारदीवारियाँ, कगार और सीमाएँ, प्रेतो की एक टोली की तरह, उनके अलग-अलग क्षितिजो पर प्रकट हो गयी है—लम्बी परछाइयो वाले बौने, धुँधले

सीमान्त पर गश्त लगाते हैं। उन दोनों की आँखों के नीचे हल्के-हल्के अर्द्धचन्द्र बन गये हैं और अब उनकी उम्र उतनी ही है जितनी अम्मू की मरते वक़्त थी। इकतीस।

न ज़्यादा।

न कम।

मगर एक करने-योग्य मरने-योग्य उम्र।

वे करीब-करीब बस पर ही पैदा हो चले थे, एस्ता और राहेल। वह कार, जिस में बाबा, उनके पिता, अम्मू, उनकी माँ, को जचगी के लिए शिलौंग के हस्पताल में ले जा रहे थे, असम के चाय-बगान की घुमावदार सड़क पर ख़राब हो गयी थी। उन्होंने कार छोड़ दी थी और राज्य परिवहन की एक भीड़-भरी बस को हाथ दे कर रोका था। एक अजीब-सी करुणा से, जो बेहद ग़रीब लोगों में अपेक्षाकृत खुशहाल लोगों के लिए होती है या शायद महज़ इसलिए कि उन्होंने देखा था कि अम्मू का गर्भ कितना भारी-भरकम है, सीटों पर बैठी सवारियों ने पति-पत्नी के लिए जगह बना दी थी और बाक़ी के सफ़र के दौरान एस्ता और राहेल के पिता को उनकी माँ का पेट (जिसके भीतर वे दोनों मौजूद थे) हिलने-डुलने से बचाने के लिए थामे रहना पड़ा था। यह उनके तलाक़ और अम्मू के केरल लौटने से पहले की बात है।

एस्ता के अनुसार, अगर वे बस में पैदा हुए होते, तो उन्हें बाक़ी ज़िन्दगी बसों में मुफ़्त सफर करने का अधिकार मिल गया होता। यह स्पष्ट नहीं था कि यह सूचना उसे कहाँ से मिली, या उसे इन बातों की जानकारी कैसे थी, लेकिन बरसों तक दोनों के मन में अपने माता-पिता के प्रति हल्की-सी रंजिश बनी रही कि उन्होंने दोनों को ज़िन्दगी भर बस में मुफ़्त सफ़र करने की नियामत से वंचित कर दिया था।

उन्हें यह भी विश्वास था कि अगर वे ज़ेब्रा क्रॉसिंग पर मारे गये तो उनके अन्तिम संस्कार का ख़र्च सरकार देगी। उन्हें इस बात का पक्का ख़याल था कि ज़ेब्रा क्रॉसिंग इसीलिए बने हैं। मुफ़्त अन्त्येष्टियों के लिए। यह अलग बात है कि आयमनम में या फिर कोट्टयम में भी, जो सबसे नज़दीकी शहर था, मरने के लिए एक भी पारपथ नहीं था, लेकिन कोचीन जाने पर, जो कार से दो घण्टे की दूरी पर था, उन्होंने कार की खिड़की से कुछ पारपथ ज़रूर देखे थे।

सरकार ने सोफ़ी मोल को दफ़नाने का ख़र्च नहीं दिया, क्योंकि वह ज़ेब्रा क्रॉसिंग पर नहीं मरी थी। उसकी अन्त्येष्टि आयमनम में हुई थी, पुराने गिरजे में जिस पर नया-नया रंग किया हुआ था। वह एस्ता और राहेल की ममेरी बहन थी, उनके मामा चाको की बेटी। वह इंग्लैण्ड से मिलने-मिलाने के लिए आयी थी। एस्ता और राहेल सात साल के थे जब वह मरी। सोफ़ी मोल लगभग नौ की थी। उसके लिए एक ख़ास बच्चों वाला ताबूत बना था।

साटन का अस्तर मढ़ा।

पीतल के चमकते हत्थों जड़ा।

वह उसमें अपने पीले क्रिमप्लीन वेलवॉटम में लेटी थी, रिबन-बँधे बालों के साथ,

और अपना मेड-इन-इंग्लैण्ड गो-गो बैग लिये, जिसे वह बेहद पसन्द करती थी। उसका चेहरा निर्वर्ण था और उस पर इतनी सिकुड़नें पड़ी थीं जितनी पानी में देर तक भीगे रहने की वजह से धोबी के अँगूठे पर पड़ जाती हैं। जनाज़े में आये लोग ताबूत के इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गये थे और वह पीला गिरजाघर किसी कण्ठ की तरह शोक-भरे गायन के स्वरों से फूल उठा था। धुँधराली दाढ़ियों वाले पादरियों ने जंजीरों से लटके लोबान के पात्र झुलाये थे और बच्चों को देख कर मुस्कराये नहीं जैसा कि वे आम इतवारों को किया करते थे।

वेदी पर लगी लम्बी मोमबत्तियाँ टेढ़ी हो गयी थीं। छोटी मोमबत्तियाँ नहीं हुई थीं।

दूर की रिश्तेदार का नाटक कर रही एक बूढ़ी औरत ने, जिसे कोई पहचान नहीं रहा था, मगर जो अक्सर जनाज़ों में लाश के नज़दीक प्रकट हो जाती थी (जनाज़ों की नशेड़ी ? प्रच्छन्न मृत्यु-पूजक ?) रुई के एक फाहे पर कोलोन लगा कर श्रद्धा और हलकी-सी चुनौती-भरे अन्दाज़ में उसे सोफ़ी मोल के माथे पर छुलाया। सोफ़ी मोल से कोलोन और ताबूत की लकड़ी की गन्ध आ रही थी।

मार्ग्रेट कॉचम्मा, सोफ़ी मोल की अंग्रेज़ माँ, सोफ़ी मोल के असली बाप चाको को इस बात की छूट नहीं दे रही थी कि वह अपनी बाँह से उसको घेर कर सान्त्वना दे सके।

सारा परिवार एक जगह इकट्ठा खड़ा था। मार्ग्रेट कॉचम्मा, चाको, बेबी कॉचम्मा, और उसकी बग़ल में उसकी भाभी मम्माची—एस्ता और राहेल की नानी (और सोफी मोल की दादी)। मम्माची लगभग अन्धी थीं और जब भी घर के बाहर जातीं, हमेशा काला चश्मा लगा लेतीं। उनके आँसू चश्मे के पीछे से बह रहे थे और उनके जबड़े के सिरे पर थरथरा रहे थे जैसे छत के किनारे पर बारिश की बूँदें। वे अपनी कलफ़-लगी लगभग सफेद साड़ी में नन्ही-सी और बीमार लग रही थीं। चाको मम्माची के इकलौते बेटे थे। अपने दुख से तो वे दुखी थी ही, चाको के दुख ने उन्हें ध्वस्त कर दिया था।

हालाँकि अम्मू, एस्ता और राहेल को जनाज़े मे शामिल होने की इजाज़त दी गयी थी, उन्हें अलग-थलग खड़ा रखा गया था, परिवार के बाकी लोगों के साथ नहीं। उनकी तरफ कोई देखना भी गवारा नहीं कर रहा था।

गिरजे में गरमी थी और कुमुदिनी के फूलों के सफ़ेद सिरे करारे हो कर ऐंठ-बरर गये थे। ताबूत के एक फूल में मधुमक्खी मर गयी थी। अम्मू के हाथ लरज़ रहे थे और उनके साथ-साथ उनका भजनों का गुटका भी। उनकी त्वचा ठण्डी थी। एस्ता उनके पास खड़ा था, मुश्किल से जगा; उसकी दुखती आँखें काँच की तरह चमक रही थीं, उसका तपता हुआ गाल अम्मू के लरज़ते, भजन-पुस्तिका थामे बाज़ू की नंगी चमड़ी से टिका था।

दूसरी तरफ राहेल पूरी तरह जगी हुई थी, प्रचण्ड रूप से चौकस और वास्तविक जीवन के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई की थकान से टूटने की हद तक पहुँची हुई।

उसने ग़ौर किया कि सोफी मोल अपने जनाज़े के लिए जगी हुई है। उसने राहेल को दो चीज़ें दिखायीं।

पहली चीज़ थी पीले गिरजाघर का नया-नया रँगा ऊँचा गुम्बद, जिसे राहेल ने कभी अन्दर से नहीं देखा था। उसे आसमान की तरह नीला रँगा गया था, भटकते बादलों और नन्हे, उड़ान-भरते जेट हवाई जहाज़ों के साथ जिनके धुँए की सफ़ेद लकीरें बादलों को आड़ा-तिरछा काट रही थीं। यह सच है (और कहना ही होगा) कि इन चीज़ों पर गिरजे के भीतर कतार से लगे आसनों में उदास कूल्हों और भजन-पुस्तिकाओं के बीच ठँसे-ठँसे देखने की बनिस्बत, ताबूत में लेटे-लेटे ऊपर देखते हुए ध्यान देना आसान रहा होगा।

राहेल ने उस किसी के बारे में सोचा जिसने रोगन के डिब्बों के साथ उस ऊँचाई पर जाने का कष्ट किया था—बादलों के लिए सफ़ेद, आकाश के लिए नीला, जेट विमानों के लिए रुपहला—और बुरुश, ओर थिनर। उसने वहाँ ऊपर उसकी कल्पना की, बेलुता जैसा कोई, नंगे बदन ओर चमकता हुआ, पटरे पर बैठा, गिरजे के ऊँचे गुम्बद से लटके पाड़ पर झूलता हुआ, गिरजे के नीले आकाश पर रुपहले जेट हवाई जहाज़ चित्रित करता हुआ।

उसने सोचा कि अगर रस्सी टूट जाती तो क्या होता। उसने कल्पना में उसे एक काले सितारे की तरह टूट कर उस आकाश से गिरते देखा जिसे उसने बनाया था। गिरजे के गरम फ़र्श पर लुंज-पुंज पड़ा हुआ, गहरे रंग का ख़ून उसके कपाल से किसी राज़ की तरह छलकता हुआ।

तब तक एस्ताप्पेन और राहेल जान गये थे कि दुनिया के पास लोगों को तोड़ने के और भी तरीके हैं। वे उस गन्ध से परिचित हो चुके थे। मितलाती-मीठी। जैसे हवा के झकोरे पर बासी गुलाबों की महक।

दूसरी चीज़ जो सोफ़ी मोल ने राहेल को दिखायी वह एक चमगादड़ शिशु था।

अन्त्येष्टि की प्रार्थना के दौरान राहेल ने एक नन्हे-से काले चमगादड़ को बेबी कॉचम्मा की जनाज़े वाली क़ीमती साड़ी पर अपने मुड़े हुए चिमटते चंगुलों से आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ते देखा। जब वह उसकी साड़ी और उसके ब्लाउज़ के बीच की जगह में पहुँचा, उसकी उदासी की तहों, उसके उघड़े हुए उदर तक, तो बेबी कॉचम्मा ने एक चीख़ मारी और अपनी भजनों की किताब से हवा को थपका। भजन गाते लोग 'क्या है ? क्या हुआ ?' के लिए, और फड़फड़ाने और साड़ी झटकने के लिए रुक गये।

उदास पादरियों ने सोने की अँगूठियों वाली उँगलियों से अपनी घुँघराली दाढ़ियाँ झाड़ीं मानो छिपी हुई मकड़ियों ने उनमें अचानक जाले बुन दिये थे।

बच्चा चमगादड़ आसमान की ओर उड़ा और एक जेट विमान में बदल गया जिसके पीछे आड़ी-तिरछी कटी धुँए की लकीरें नहीं थीं।

सिर्फ़ राहेल का ध्यान गया कि सोफ़ी मोल ने ताबूत के भीतर गुपचुप कलाबाज़ी लगायी।

उदासी-भरा गायन फिर से शुरू हो गया और उन्होंने उसी अवसाद-भरे बन्द को दो बार गाया। और एक बार फिर पीला गिरजा स्वरों से भरे कण्ठ की तरह भर उठा।

जब उन्होंने गिरजे के पीछे वाले छोटे-से कब्रिस्तान में सोफ़ी मोल के ताबूत को ज़मीन में उतारा, राहेल को मालूम था कि वह तब भी मरी नहीं थी। उसने (सोफ़ी मोल की ओर से) लाल मिट्टी के मुलायम स्वर और ताबूत के चमकते पालिश को ख़राब कर देने वाली नारंगी बजरी के कठोर स्वर सुने। उसने ताबूत की चमकीली लकड़ी के पार से, ताबूत के साटिन-जड़े अस्तर के पार से, मद्धम धमक और मिट्टी और लकड़ी से घुटी-घुटी पादरियों की अवसाद-भरी आवाज़ें सुनीं।

हम सौंपते हैं तेरे हाथों मे, ओ दयालु परमपिता,
अपनी इस दिवंगत बच्ची की आत्मा,
और हम धरती को सौंपते हैं उसकी देह,
मिट्टी में मिट्टी, ख़ाक मे ख़ाक, धूल में धूल

धरती के भीतर सोफ़ी मोल ने चीख़ें मारीं, और अपने दाँतों से साटिन को चिन्दी-चिन्दी कर दिया । मगर धरती और पत्थर के पार से चीख़ें सुनायी नहीं देतीं।

सोफ़ी मोल इसलिए मर गयी क्योंकि वह साँस नहीं ले सकी।

उसकी अन्त्येष्टि ने उसे मार डाला । *धूलमधूलमधूलमधूल।* उसकी क़ब्र पर लगे पत्थर पर खुदा था—*अत्यल्प काल के लिए हमें मिली एक सूर्यकिरण।*

अम्मू ने बाद में समझाया था कि *अत्यल्प काल के लिए* का मतलब है बहुत कम समय के लिए।

अन्त्येष्टि के बाद अम्मू जुड़वो को वापस कोट्टयम पुलिस स्टेशन ले कर गयीं। वे उस जगह से परिचित थे। पिछले दिन का अच्छा-ख़ासा हिस्सा उन्होने वहाँ बिताया था। दीवारों और फ़र्नीचर में बसी पेशाब की पुरानी, तीखी, धुँआसी दुर्गन्ध के अन्देशे से उन्होंने गन्ध के शुरू होने से काफी पहले ही अपने नथुने बन्द कर लिये थे।

अम्मू ने थानेदार के बारे में पूछा था और उसके दफ़्तर में ले जाये जाने पर उन्होंने थानेदार को बताया था कि एक भयंकर ग़लती हो गयी है और वे एक बयान देना चाहती है। उन्होंने वेलुता से मुलाक़ात की माँग की।

इन्स्पेक्टर थॉमस मैथ्यू की मूँछें एयर इण्डिया के महाराजा के-से दोस्ताना अन्दाज़ में फड़कीं, मगर उसकी आँखों में काइयाँपन और लालच था।

'इस सब के लिए थोड़ी देर हो गयी है न, क्यो ?' उसने कहा। वह कोटट्यम मे प्रचलित मलयालम की देहाती बोली बोल रहा था। बोलते हुए वह अम्मू की छातियों को घूर रहा था। उसने कहा कि पुलिस को जो जानना चाहिए, वह जानती थी और यह कि कोट्टयम पुलिस *वेश्याओं* से या उनके नाजायज़ बच्चो से बयान नहीं लेती। अम्मू ने कहा कि वे इसके बारे मे देख लेंगी। इन्स्पेक्टर थॉमस मैथ्यू अपनी मेज़ से उठ कर दूसरी तरफ़ आया और हाथ मे बेंत लिये अम्मू के नज़दीक पहुँचा।

'अगर मैं तुम्हारी जगह होता,' उसने कहा, 'मैं चुपचाप घर चला जाता।' फिर उसने अम्मू की छातियों को अपनी बेंत से ठकोरा। आहिस्ता से। ठक, ठक। मानो वह टोकरी से आम चुन रहा हो। इशारा करते हुए कि कौन-कौन-से वह चाहता था कि

झोले में डाल कर पहुँचा दिये जायँ। ऐसा लगता था कि इन्स्पेक्टर थॉमस मैथ्यू को पता था कि वह किसके साथ छूट ले सकता था और किसके साथ नहीं। पुलिस वालों के भीतर यह सहज ज्ञान होता ही है।

उसके पीछे एक लाल-नीली तख़्ती पर अंग्रेजी में लिखा था :

Politeness	पोलाइटनेस
Obedience	ओबीडिएंस
Loyalty	लॉयल्टी
Intelligence	इनटेलिजेंस
Courtesy	कर्टेसी
Efficiency	एफ़िशिएंसी*

जब वे पुलिस स्टेशन से निकले तो अम्मू रो रही थीं, इसलिए एस्ता और राहेल ने उनसे नहीं पूछा कि *वेश्या* का मतलब क्या होता है। या यह कि *नाजायज़* किसे कहते हैं। यह पहली बार था जब उन्होंने अपनी माँ को रोते देखा था। वे सुबक नहीं रही थीं। उनका चेहरा पत्थर की तरह सख़्त था, लेकिन आँसू उनकी आँखों से छलकते पड़ रहे थे और उनके जमे हुए गालों पर नीचे बहते जा रहे थे। इस चीज़ ने उन जुड़वाँ भाई-बहनों को भय से त्रस्त कर दिया था। अम्मू के आँसुओं ने हर चीज़ को, जो उस समय तक अवास्तविक जान पड़ती थी, वास्तविक बना दिया था। वे बस से आयमनम लौटे थे। बस का कण्डक्टर, ख़ाकी वर्दी पहने पतला-सा आदमी, बस के डण्डे पर सरकता हुआ उनकी तरफ़ आया था। उसने अपने हड्डीले कूल्हे एक सीट की पीठ से लगा कर सन्तुलन बनाया था और टिकट पंच करने वाली मशीन को अम्मू के सामने चटकाया था। चट-चट। *किधर को ?* राहेल बस के टिकटों की गड्डी को और कण्डक्टर के हाथों पर बस के डण्डे के लोहे की खटास सूँघ सकती थी।

'वह मर गया है,' अम्मू उसकी ओर फुसफुसायी थीं, 'मैंने उसे मार डाला है।'

'आयमनम,' इससे पहले कि कण्डक्टर अपना आपा खो बैठता, एस्ता ने जल्दी से कहा था।

उसने अम्मू के बटुए से पैसे निकाले। कण्डक्टर ने उसे टिकट दिये। एस्ता ने सावधानी से उन्हें तह किया और अपनी जेब में रख लिया। फिर उसने अपनी नन्ही बाँहें अपनी जड़, रोती माँ के गिर्द डाल दीं।

दो हफ़्ते बाद एस्ता को लौटा दिया गया। अम्मू पर ज़ोर दे कर उसे उनके पिता के पास वापस भिजवा दिया गया, जिसने तब तक असम में चाय बगान की अपनी अकेलेपन से भरी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया था और कार्बन ब्लैक बनाने वाली एक कम्पनी में काम करने के लिए कलकत्ता आ गया था। उसने दोबारा शादी कर ली थी,

* विनम्रता, आज्ञाकारिता, निष्ठा, समझदारी, शिष्टता, कुशलता। अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षर मिल कर 'पुलिस' शब्द बनते हैं।

पीना छोड़ दिया था (कमो-बेश) और कभी-कभार ही फिर से पियक्कड़ी के दौरों का शिकार होता।

एस्ता और राहेल ने तब से एक-दूसरे को नहीं देखा था।

और अब तेईस साल बाद उनके पिता ने एस्ता को दोबारा-लौटा दिया था। उसने एस्ता को एक सूटकेस और एक चिट्ठी दे कर आयमनम वापस भेज दिया था। सूटकेस ठाठ-बाट वाले नये कपड़ों से भरा हुआ था। बेबी कॉचम्मा ने राहेल को वह चिट्ठी दिखलायी थी। वह तिरछी, स्त्रियों की-सी, कॉन्वेन्ट स्कूल वाली लिखावट में लिखी गयी थी, पर नीचे हस्ताक्षर उनके पिता के थे। या कम-से-कम नाम उन्हीं का था। राहेल तो दस्तखत पहचान भी न पाती। चिट्ठी मे कहा गया था कि वह, उनका पिता, अपनी कार्बन ब्लैक वाली नौकरी से रिटायर हो गया था और ऑस्ट्रेलिया बसने जा रहा था, जहाँ उसे चीनी मिट्टी का सामान बनाने वाले कारख़ाने में सुरक्षा-अधिकारी की नौकरी मिल गयी थी, और यह कि वह एस्ता को अपने साथ नहीं ले जा सकता था। उसने आयमनम में सबको शुभकामनाएँ दी थीं और कहा था कि अगर वह कभी हिन्दुस्तान लौटा तो वह एस्ता से मिलने आयेगा, जो बात कि, उसने आगे कहा था, कुछ नामुमकिन-सी थी।

बेबी कॉचम्मा ने राहेल से कहा कि वह चाहे तो चिट्ठी रख सकती है। राहेल ने उसे वापस लिफाफे में डाल दिया था। काग़ज़ नरम पड़ गया था और उसे कपड़े की तरह तह किया जा सकता था।

वह भूल गयी थी कि आयमनम में मानसून की हवा सचमुच कितनी नम होती है। फूली हुई अलमारियाँ चरमरातीं। बन्द खिड़कियाँ धड़ाक से खुल जातीं। किताबें अपनी जिल्दो के बीच नरम ओर सिलवटदार हो जाती। शाम को अजीबो-ग़रीब कीड़े विचारों की तरह प्रकट होते और बेबी कॉचम्मा के मद्धम चालीस वॉट के बल्बों पर जल मरते। दिन के समय उनके झुलसे हुए कुरकुरे ककाल फ़र्श और खिड़कियों की चौखटों पर अटे रहते ओर जब तक कोच्चु मारिया उन्हें अपने प्लास्टिक के डस्ट पैन मे बुहार न ले जाती, हवा में किसी चीज़ के जलने की गन्ध बसी रहती।

जून की बारिश, वह अब भी वैसी ही थी।

आकाश फट पड़ा था ओर पानी मूसलाधार बरस रहा था, पुराने अडियल कुँए मे फिर से प्राण फूँकता हुआ, सुअरविहीन सुअरबाड़े को काई से हरा बनाता हुआ, चाय के रंग वाले थिर डबरों पर धारासार गोलियाँ बरसाता हुआ जिस तरह स्मृति चाय के रंग वाले थिर दिमाग़ों पर बमबारी करती है। घास नम-हरी ओर खुश नज़र आती थी। कीचड़ में प्रसन्नचित्त केंचुए बेंगनी किलबिलाहट से क्रीड़ा करते। हरी बिच्छू बूटियाँ सिर हिलातीं। पेड़ झुक कर दोहरे होते जाते।

दूर कहीं, हवा और पानी में, नदी तट पर, दिन के अचानक घिर आने वाले गर्जन-भरे अँधियारे में, एस्ता टहल रहा था। उसने मसली हुई स्ट्रॉबेरी के रंग की गुलाबी टी-शर्ट पहनी हुई थी, जिसका रग भीगने से अब और गहरा हो गया था, और उसे मालूम था कि राहेल आ गयी है।

एस्ता बचपन ही से ख़ामोश था, इसलिए कोई भी सही-सही इस बात की निशानदेही नहीं कर सकता था कि ठीक-ठीक कब (दिन और महीना न सही, वर्ष ही सही) उसने बोलना बन्द कर दिया था। यानी पूरी तरह बात करना बन्द कर दिया था। सच तो यह है कि 'ठीक-ठीक कब' जैसा कुछ था भी नहीं। वह तो एक आहिस्ता-आहिस्ता सामान समेटना और दुकान चढ़ाना था। मुश्किल से ध्यान में आने वाली ख़ामोशी। मानो उसका बातचीत का भण्डार ख़त्म हो गया था और उसके पास कहने को कुछ नहीं रह गया था। तो भी एस्ता की चुप्पी कभी अटपटी नहीं लगी। कभी दख़ल देने वाली नहीं। कभी शोर-भरी नहीं। वह आरोप लगाती, विरोध-भरी चुप्पी नहीं थी, बल्कि एक किस्म की ग्रीष्मकालीन निष्क्रियता थी, सुषुप्तावस्था थी, उस प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप थी, जिससे काम ले कर लंगफ़िश ख़ुद को गर्मियों का मौसम काटने के लिए तैयार करती है, फ़र्क़ बस इतना था कि एस्ता के सिलसिले में लगता था कि ये गर्मियाँ अनन्त काल तक ख़त्म होने वाली नहीं थीं।

समय के साथ उसने यह महारत हासिल कर ली थी कि जहाँ भी वह हो, उस परिवेश में घुल-मिल जाय—किताबों की अलमारियों, बाग़ीचों, पर्दों, दरवाज़ों, सड़कों में—अनसधी आँखों को निष्प्राण, लगभग अदृश्य जान पड़े। अजनबियों का ध्यान उसकी तरफ़ आम तौर पर कुछ देर में जाता, भले ही वे उसके साथ एक ही कमरे में होते। उन्हें उसकी चुप्पी का एहसास और भी देर में होता था। कुछ को तो होता ही नहीं था।

एस्ता दुनिया में बहुत कम जगह घेरता था।

सोफी मोल की अन्त्येष्टि के बाद जब एस्ता को लौटाया गया, उनके पिता ने उसे कलकत्ता में एक लड़कों के स्कूल में दाख़िल करा दिया। वह असाधारण विद्यार्थी नहीं था, लेकिन वह कमज़ोर भी नहीं था, न किसी चीज़ में ख़ास तौर पर फिसड्डी ही था। *एक औसत छात्र*, या *सन्तोषजनक कार्य*—अमूमन यही टिप्पणियाँ उसके टीचर उसकी वार्षिक प्रगति रिपोर्टों में दर्ज करते। एक और दुहरायी जाने वाली शिकायत थी—*सामूहिक गतिविधियों में भाग नहीं लेता।* हालाँकि 'सामूहिक गतिविधियों' से सही-सही उनका आशय क्या था, यह उन्होंने कभी बताया नहीं।

एस्ता ने औसत अंकों के साथ स्कूली पढ़ाई पूरी की, मगर कॉलेज जाने से इनकार कर दिया। इसकी बजाय, अपने पिता और सौतेली माँ को शुरू-शुरू में काफ़ी ज़्यादा उलझन और अचकचाहट में डालते हुए उसने घरेलू काम-काज करना शुरू कर दिया था। मानो अपने ही तरीके से वह अपनी रोज़ी-रोटी कमाने की कोशिश कर रहा हो। वह झाड़ू-पोंछा और कपड़ों की सारी धुलाई करता। उसने खाना बनाना और सब्ज़ियाँ ख़रीदना सीख लिया। बाज़ार में तेल-चुपड़ी, चमकती सब्ज़ियों के पहाड़-नुमा ढेरों के पीछे बैठे दुकानदार धीरे-धीरे उसे पहचानने लगे और अपने दूसरे ग्राहकों की चीख़-पुकार अनसुनी कर, उसकी तरफ़ मुख़ातिब होते। जो सब्ज़ियाँ वह चुनता, उन्हें रखने के लिए वे उसे फ़िल्म के जंग-लगे डिब्बे देते। वह कभी मोल-भाव नहीं करता था। वे उसके साथ कभी धोखाधड़ी नहीं करते थे। जब सब्ज़ियाँ तुल जातीं और उनका

दाम दे दिया गया होता, वे उन्हें उसकी लाल प्लास्टिक की टोकरी में रखवा देते (प्याज नीचे, बैंगन और टमाटर ऊपर) और हमेशा धनिये की एक गड्डी और मुट्ठी भर हरी मिर्चें मुफ़्त में। एस्ता उन्हें उठाये हुए ट्राम से घर लौटता। शोर के सागर पर तैरता ख़ामोशी का एक बुलबुला।

खाने के वक़्त जब उसे कुछ चाहिए होता, वह उठ कर खुद ले लेता।

एक बार जो चुप्पी आयी तो फिर वह एस्ता के भीतर बस गयी और फैलती रही उसने उसके सिर के अन्दर से अपनी दलदली बाँहें फैलायीं और उसे अपनी आग़ोश मे ले लिया। वह उसे गर्भ में सुनायी देने वाली किसी सनातन धड़कन के लय पर झुलाती रहती। वह अपनी चुपीती, ऑक्टोपस-सी बाँहें इंच-दर-इंच उसकी खोपड़ी के भीतर पसारती रही, उसकी स्मृति के टीलों और घाटियों को बुहारती, पुराने फिक़रों को उनकी जगह से हटाती, उन्हें उसकी ज़बान की नोक से झाड़ कर अलग करती। उसने उसके विचारों को उन शब्दो से अनावृत कर दिया जो उनको बयाँ करते थे और उन ख़यालों को छिला हुआ और नगा छोड़ दिया। नाक़ाबिले-बयान। सुन्न और इसी वजह से शायद किसी देखने वाले के लिए लगभग नामौजूद। धीरे-धीरे समय के साथ एस्ता ने खुद को दुनिया से पीछे खींच लिया। वह इस बेचैन ऑक्टोपस का आदी हो गया, जो उसके भीतर ज़िन्दा था और अपनी स्याह सुलाने वाली दवा की पिचकारी उसके अतीत पर छिड़कता रहता था। आहिस्ता-आहिस्ता उसकी ख़ामोशी की वजह नीचे कहीं छिपती चली गयी, अपने होने की सच्चाई की तसल्लीबख़्श तहों के भीतर कही गहरे दफ़्न होती चली गयी।

जब उसके प्यारे, अन्धे, खजैले, असंयमी सत्रह-वर्षीय देसी कुत्ते ख़ूबचन्द ने एक लम्बी-खिंचने-वाली दयनीय मोत मरने का फेसला किया, तब एस्ता ने उसकी अन्तिम परीक्षा के दौरान कुछ इस तरह उसकी सेवा-टहल की मानो खुद उसकी अपनी ज़िन्दगी उस पर निर्भर थी। अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी महीनों में ख़ूबचन्द, जिसके इरादे बड़े नेक मगर मसाना क़तई भरोसे-काबिल नही था, खुद को घसीट कर पीछे की बगिया में खुलने वाले दरवाज़े के निचले हिस्से में बने क़ब्ज़ेदार पल्ले तक ले जाता, अपना सिर उसके बाहर निकाल देता और रुक-रुक कर चमकीले पीलेपन से धार छोड़ता रहता। *अन्दर।* फिर ख़ाली मसाने और साफ़ अन्तरात्मा के साथ वह सिर उठा कर एस्ता की ओर अपनी धुँधलायी हरी आँखों से देखता जो उसकी झबरी खोपड़ी में काई-लगे पोखरों की तरह जमी हुई थीं और फिर फर्श पर पैरों के गीले निशान छोड़ता हुआ लहराती चाल से अपने सीले गदेले पर वापस चला जाता। जिस समय ख़ूबचन्द अपने गदेले पर मरता हुआ पड़ा था, एस्ता उसके चिकने बैंगनी अण्डकोष पर कमरे की खिड़की को प्रतिबिम्बित देख सकता था। और उसके पार फैला आकाश। और एक बार तो एक चिड़िया, जो सामने से उड़ती चली गयी। एस्ता के लिए—जिसके भीतर पुराने गुलाबों की महक बसी हुई थी और जिसकी दीक्षा एक टूटे हुए आदमी की स्मृतियों से हुई थी—यह तथ्य किसी चमत्कार-सरीखा था कि इतनी नश्वर, इतनी असह्य ढंग से सुकुमार चीज़ जीवित बच निकली थी। उसे ज़िन्दा रहने की *इजाज़त* दी गयी

थी। एक बूढ़े कुत्ते के अण्डकोष में प्रतिबिम्बित एक उड़ती चिड़िया। इस ख़याल ने उसे खुल कर मुस्कराने पर मजबूर कर दिया था।

खूबचन्द की मौत के बाद एस्ता ने अपना टहलना शुरू किया। वह घण्टों पैदल चलता। शुरू-शुरू में वह सिर्फ़ पास-पड़ोस की गश्त लगाता, मगर धीरे-धीरे फ़ासला बढ़ाते हुए वह दूर-दूर के इलाक़ों तक जाने लगा।

लोग उसे सड़क पर देखने के आदी हो गये थे। एक खुशपोश आदमी ख़ामोशी से टहलता हुआ। उसका चेहरा सँवला गया और उस पर एक घरबाहरीपन उतर आया। धूप से झुर्रीदार बना एक रौंगड़पन। वह जितना था, उससे ज़्यादा ज्ञानी दिखायी देने लगा। शहर में फिरते मछुआरे-सरीखा। अपने भीतर समन्दर के रहस्य छुपाये।

अब जबकि उसे दोबारा लौटा दिया गया था, एस्ता पूरे आयमनम को नापता फिरता।

किसी-किसी दिन वह नदी के किनारों पर घूमता जो मल-मूत्र और विश्व बैंक के क़र्ज़ से ख़रीदे गये कीटाणु-नाशकों से गँधाते रहते। ज़्यादातर मछलियाँ मर चुकी थीं। जो बच निकली थीं, उनके छिलके झड़ने लगे थे और चमड़ी पर फोड़े फूट निकले थे।

दूसरे मौक़ों पर वह सड़क पर चलता चला जाता। खाड़ी के पैसे से बने उन नये, ताज़ा-ताज़ा-पके, चाशनी-चढ़े मकानों के पास से गुज़रता हुआ, जिन्हें नर्सों, राजगीरों, तार मोड़ने वालों और बैंक कर्मचारियों ने बनवाया था, जो दूर-दराज़ की जगहों में दुखी रहते हुए कड़ी मेहनत करते थे। ईर्ष्या से सँवलाये और अपने निजी रबर के पेड़ों के बीच अपने निजी रास्तों में निहुरे-दुबके, कुढ़न-भरे, पुराने मकानों से हो कर बढ़ता हुआ। हर मकान एक लड़खड़ाती जागीर। अपनी निजी गाथा के साथ।

वह गाँव के उस स्कूल से हो कर गुज़रता जिसे उसके परदादा ने अछूत बच्चों के लिए बनवाया था।

सोफ़ी मोल के पीले गिरजे को पार करता। आयमनम यूथ कुंग फू क्लब को पार करता। टेंडर बड्स नर्सरी स्कूल (सवर्णों के लिए) को पार करता। चावल, चीनी और छत से पीले गुच्छों की शक्ल में लटके केले बेचने वाली राशन की दुकान को पार करता जहाँ काल्पनिक दक्षिण भारतीय यौन अपराधियों के बारे में सस्ती चालू पत्रिकाएँ छत से लटकने वाली रस्सियों से बँधी कपड़ों वाली बुटकियों में दबी रहतीं, गर्म हवा के झोंकों में वे अलसाये आनन्द से फिरकी की तरह गोल-गोल घूमती हुईं, ईमानदार राशन ख़रीदने वालों को नकली ख़ून के तालाबों में लेटी नंगी, गदराई औरतों की झलकियों से ललचाती रहतीं। कभी-कभी एस्ता लकी प्रेस के पास से हो कर गुज़रता—पुराने कॉमरेड के.एन.एम. पिल्ले का छापाख़ाना—जो किसी ज़माने में कम्यूनिस्ट पार्टी की आयमनम शाखा था, जहाँ आधी रात को स्टडी-सर्कल चलते और मार्क्सवादी पार्टी के उद्बोधनपरक गीत छापे और वितरित किये जाते। छत पर लहराने वाला झण्डा पुराना पड़ कर कुम्हला गया था। उसकी लाली, ख़ून की तरह बह गयी थी।

कॉमरेड पिल्ले कभी-कभी ख़ुद भी सुबह के समय एक मटमैली एयरटेक्स बनियान पहने बाहर निकलते। उनके मुलायम, सफ़ेद मुंडू के भीतर से उनके अण्डकोषों की

परछाईं झलकती। वे अपने जिस्म पर नारियल के गर्म, मसालेदार तेल की मालिश करते रहते, अपने बूढ़े, ढीले गोश्त को गूँधते हुए, जो उनकी हड्डियों से च्यूइंग गम की तरह राजी-खुशी खिंचता रहता। वे अब अकेले रहते थे। उनकी पत्नी कल्याणी गर्भाशय के कैंसर से मर चुकी थी। उनका बेटा लेनिन दिल्ली जा बसा था जहाँ वह विदेशी दूतावासों में फुटकर कामों की ठेकेदारी करता था।

अगर कॉमरेड पिल्ले उस समय, जब एस्ता गुजरता, अपने घर के बाहर अपनी देह पर तेल मालिश कर रहे होते तो वे उससे सलाम-दुआ करना न चूकते।

'एस्ता मोन,' वे अपनी ऊँची पिपियाती आवाज़ में पुकारते, जो छाल उतारे गन्ने की तरह अब फटी-फटी और रेशेदार हो गयी थी। 'गुड मॉर्निंग ! सुबह की सैर पर निकले हो ?'

एस्ता आगे बढ़ जाता, गुस्ताख़ी से नहीं, न अदब से। महज़ ख़ामोश।

कॉमरेड पिल्ले ख़ून की रफ़्तार तेज़ करने के लिए शरीर को जगह-जगह थपथपाते। वे बता नहीं सकते थे कि इतने वर्षों के अन्तराल पर एस्ता उन्हें पहचानता था या नहीं। उन्हें इसकी ख़ास परवाह भी नहीं थी। हालाँकि सारे मामले में उनकी भूमिका किसी भी दृष्टि से छोटी नहीं रही थी, तो भी जो कुछ हुआ था, उसके लिए कॉमरेड पिल्ले ख़ुद को निजी तौर पर किसी तरह उत्तरदायी नहीं मानते थे। उन्होंने सारे मामले को राजनीतिक अनिवार्यता का अवश्यम्भावी परिणाम मान कर ख़ारिज कर दिया था। वही पुराना आमलेट और अण्डों वाला मामला। यूँ भी, कॉमरेड पिल्ले दुनियावी तौर पर एक राजनीतिक आदमी थे। पेशेवर आमलेट-बनाने-वाले। वे एक गिरगिट की तरह दुनिया को पार करते। कभी ख़ुद को प्रकट न करते हुए, न ऐसा न करने का एहसास कराते हुए। उथल-पुथल से बिना जले बाहर आते हुए।

आयमनम में वे पहले शख़्स थे जिन्होंने राहेल की वापसी की बाबत सुना था। इस ख़बर ने उन्हें उतना उद्विग्न नहीं किया था, जितना उनकी उत्सुकता को जगाया था। एस्ता तो कॉमरेड पिल्ले के लिए लगभग अजनबी था। आयमनम से उसका निष्कासन इतना अचानक और ग़ैर-रस्मी तौर पर हुआ था, और इतना पहले। मगर राहेल को कॉमरेड पिल्ले भली-भाँति जानते थे। उन्होंने उसे बड़ा होते हुए देखा था। हैरानी से उन्होंने सोचा था कि आख़िर कौन-सी चीज़ उसे वापस ले आयी थी। इतने वर्षों के बाद।

जब तक राहेल नहीं आयी थी, एस्ता के सिर में मौन का राज रहा। लेकिन वह अपने साथ गुज़रती हुई रेलगाड़ियों की आवाज़ें लायी थी, और वह रोशनी और छाया जो तुम पर पड़ती है अगर तुम्हारे पास खिड़की वाली सीट हो। वह दुनिया, जो बरसों से बाहर बन्द कर दी गयी थी, अचानक बाढ़ की तरह अन्दर धँसती चली आयी और अब एस्ता इस तमाम शोर-गुल में ख़ुद को सुन नहीं पाता था। रेलगाड़ियाँ। आवा-जाही। संगीत। शेयर-बाज़ार। एक बाँध फट पड़ा था और बनैली धाराएँ हर चीज़ को अपने भँवर में ऊपर को बुहार लायी थीं। पुच्छल-तारे, वायलिन, जुलूस, अकेलापन, बादल, दाढ़ियाँ, कट्टरपन्थी, सूचियाँ, अण्डे, भूकम्प, हताशा—सब एक भँवरीली खलबली में ऊपर को

उतरा गये थे।

और एस्ता को, नदी तट पर चहलक़दमी करते हुए, बारिश के गीलेपन का एहसास नहीं हो रहा था, न उस शीत-मारे पिल्ले के रह-रह कर कँपकँपाने का, जो वक़्ती तौर पर उसके साथ हो लिया था और उसकी बग़ल में फचफचाता चल रहा था। वह पुराने मैंगोस्टीन के पेड़ के पास से गुज़र कर नदी में धँसे हुए कँकरीले कगार के सिरे तक गया। वहाँ वह उकड़ूँ बैठ गया और बारिश में आगे-पीछे झूमने लगा। उसके जूतो के नीचे गीली मिट्टी चूसने जैसी भद्दी आवाज़ें पैदा कर रही थी। शीत-मारा पिल्ला काँप रहा था—और एकटक ताक रहा था।

जब एस्ता की दोबारा-वापसी हुई, आयमनम वाले घर में बस दो लोग बचे थे। बेबी कॉचम्मा और बिगड़ैल, बौनी ख़ानसामिन, कोच्चु मारिया जिसके दिल में सिरका भरा था। उनकी नानी, मम्माची, दिवंगत हो चुकी थीं। चाको अब कैनेडा में रहता था और पुरानी अनमोल चीज़ों का नाकाम धन्धा चलाता था।

रही राहेल।

अम्मू के मरने के बाद (यानी उस समय के बाद जब वे आख़िरी बार आयमनम आयी थीं, कॉर्टिज़ोन से सूजी हुई और सीने में ऐसी घरघराहट लिये मानो दूर से कोई आदमी चिल्ला रहा हो) राहेल भटकती रही। एक स्कूल से दूसरे स्कूल। वह अपनी छुट्टियाँ आयमनम में गुज़ारती, (दुख से सुस्त और सनकाये, और ताड़ीख़ाने में दो पियक्कड़ों की तरह अपने शोक में ढुलके हुए) चाको और मम्माची द्वारा आम तौर पर नज़रन्दाज़ की जाती हुई और अपने तईं बेबी कॉचम्मा को आम तौर पर नज़रन्दाज़ करती हुई। राहेल की परवरिश से जुड़े मामलो मे चाको और मम्माची ने कोशिशे की, पर नाकाम रहे। वे देख-भाल मुहैया कराते (खाना, कपड़े, फ़ीस), मगर चिन्ता-फ़िकर से हाथ खींचे रखते।

सोफ़ी मोल का अभाव आयमनम वाले घर में यूँ आहिस्ता-आहिस्ता क़दम धरता घूमता-फिरता जैसे कोई ख़ामोश चीज़ मोजे पहने चहलक़दमी कर रही हो। वह किताबों और खाने की चीज़ो में दुबका रहता। मम्माची के वायलिन-केस में। चाको की टाँगों के घावों के खुरण्डो में, जिन्हें वह लगातार कुरेदता रहता। उसकी ढीली, औरतों जैसी टाँगों में।

यह दिलचस्प है कि कैसे मृत्यु की स्मृति कभी-कभी उस जीवन की स्मृति की तुलना में कहीं देर तक ज़िन्दा रहती है, जिसे उसने हस्तगत कर लिया होता है। वर्षो के साथ सोफ़ी मोल की स्मृति धीरे-धीरे फीकी पड़ती गयी (ज्ञान की छोटी-छोटी बातों की तलवगार सोफ़ी मोल : *बूढ़ी चिड़ियाँ कहाँ मरने जाती हैं ? मरी हुई चिड़ियाँ आसमान से पत्थरों की तरह गिरतीं क्यो नहीं ?* कर्कश सच्चाई की सन्देशवाहक सोफ़ी मोल : *तुम दोनों पूरे देसी हो और मैं आधी।* ख़ून-खच्चर की उस्ताद सोफी मोल : *मैंने एक दुर्घटना मे एक आदमी को देखा जिसकी आँख नस से लटकी झूल रही थी, यो-यो की तरह*)। दूसरी ओर सोफी मोल का अभाव आहिस्ता-आहिस्ता ज़िन्दा और ज़ोरावर होता गया। वह हरदम वहाँ बना रहता। मौसमी फल की तरह। हर मौसम में। सरकारी

नौकरी की तरह स्थायी। वह राहेल के साथ-साथ चलता हुआ उसे बचपन से (स्कूल-दर-स्कूल) नारीत्व तक ले आया था।

राहेल को सबसे पहले नाज़रेथ कॉन्वेंट में ग्यारह साल की उम्र में ब्लेकलिस्ट किया गया, जब उसे अपनी हाउस मिस्ट्रेस की बगिया के फाटक के बाहर ताज़ा गोबर की एक चोथ को फूलो से सजाते हुए पकड़ा गया। अगली सुबह असेम्बली मे उससे कहा गया कि वह ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी में *'डिप्रेविटी'* शब्द के अर्थ देखे और ऊँचे स्वर में पढ़ कर सुनाये।

'द क्वॉलिटी ऑर कंडिशन ऑफ़ बीइंग डीप्रेव्ड ऑर करप्ट,'[1] राहेल ने पढा था। भिंचे-मुँह वाली ननों की कतार उसके पीछे बैठी थी और मुँह दबाये खिखियाती स्कूली लड़कियों के चेहरों का एक समुद्र उसके सामने था। *'पर्वर्टेड क्वॉलिटी : मॉरल परवर्शन, द इननेट करप्शन ऑफ़ ह्यूमन नेचर ड्यू टू ओरिजिनल सिन, बोथ दि इलेक्ट ऐण्ड द नॉन-इलेक्ट कम इन टू द वर्ल्ड इन ए स्टेट ऑफ़ टोटल डी. ऐण्ड ऐलियेनेशन फ्रॉम गॉड, ऐण्ड कैन, ऑफ़ देमसेल्व्स डू नथिंग बट सिन । जे. एच. ब्लंट।'*[2]

छै महीने बाद बड़ी लड़कियों के बार-बार शिकायत करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया गया। उस के ख़िलाफ दरवाज़ों के पीछे छिपने और जान-बूझ कर अपनी सीनियर लड़कियो से टकराने का इल्ज़ाम (सही तौर पर) लगाया गया था। जब उससे उसके व्यवहार के बारे में पूछ-ताछ की गयी थी, (बहला- फुसला कर, बेत लगा कर, भूखे रख कर) तो उसने अन्ततः स्वीकार किया था कि उसने ऐसा यह जानने के लिए किया था कि क्या छातियाँ दर्द करती हैं या नही। उस ईसाई संस्था में छातियो को स्वीकार नही किया जाता था। उनका वजूद ही नही माना जाता था, और अगर वे थीं ही नहीं तो क्या वे दर्द कर सकती थी ?

तीन निष्कासनो मे से यह पहला था। दूसरी बार सिग्रेट पीने के लिए। तीसरी बार अपनी हाउस मिस्ट्रेस के नकली बालों के गोले को आग लगाने के लिए, जिसे राहेल ने ज़ोर-दबाव पड़ने पर कुबूल किया कि उसने चुरा लिया था।

हर स्कूल में जहाँ वह गयी टीचरो ने नोट किया कि वह :

(क) निहायत बाअदब लड़की थी।
(ख) उसकी कोई सहेली नहीं थी।

लगता था, वह भ्रष्टाचार की कोई विनयशील अकेली किस्म थी। और इसी कारण, वे सभी सहमत थी (अपने टीचराना एतराज़ का स्वाद लेते हुए, अपनी जीभों से उसे छूते हुए, मीठी गोली की तरह उसे चूसते हुए) कि यह तो और भी ख़तरनाक

---

1 चरित्र-हीन या भ्रष्ट होने की स्थिति या विशेषता। 2. विकृति का अवगुण : नैतिक विकृति, मूल पाप के कारण मानवीय प्रकृति की अन्तर्निहित भ्रष्टता, (ईश्वर द्वारा) मनोनीत और गैर-मनोनीत (मनुष्य) ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण विमुखता और विकृति की अवस्था मे ससार मे आते है, और अपने तईं, पाप के अलावा और कुछ नहीं कर सकते। जे. एच. ब्लंट।

था।

कुछ ऐसा था, वे आपस में फुसफुसातीं, *मानो वह जानती ही न हो कि लड़की होना क्या होता है।*

उनका अन्दाज़ा बहुत ग़लत नहीं था।

अजीब तरीक़े से, लगता था, उपेक्षा का परिणाम आत्मा की अप्रत्याशित मुक्ति में हुआ था।

राहेल किसी पक्ष या पक्षधर के बिना ही बड़ी हुई। न तो कोई उसकी शादी तय कराने वाला था। न कोई उसके लिए दहेज तैयार करने वाला और इसलिए न कोई अनिवार्य पति ही था—उसके क्षितिज पर मँडराता हुआ।

लिहाज़ा जब तक वह शोर-शराबा न करती, वह अपनी तहक़ीकात जारी रखने के लिए स्वतन्त्र थी : छातियों मे और इसमें कि वे कितना दर्द करती हैं। नकली बालों के गोलो में और इसमें कि वे कितनी सुगमता से जलते हैं। ज़िन्दगी में और इसमें कि उसे कैसे जिया जाये।

स्कूल ख़त्म करने पर वह दिल्ली के एक औसत वास्तुशिल्प महाविद्यालय में दाख़िला हासिल करने में कामयाब हो गयी। यह आर्किटेक्चर में किसी गहरी दिलचस्पी का नतीजा नहीं था। सच तो यह है कि सतही दिलचस्पी का भी नहीं। बस, उसने संयोग से केवल प्रवेश-परीक्षा दी थी और संयोग ही से सफल भी हो गयी थी। कॉलेज के अध्यापक उसके चारकोल स्टिल-लाइफ स्केचों के (विशाल) आकार से ज़्यादा प्रभावित हुए थे, बनिस्बत उनके कौशल से। उन्होंने लापरवाही और दुःसाहस से अंकित रेखाओं को कलात्मक आत्मविश्वास मानने की भूल की थी, हालाँकि हक़ीक़त में उनकी रचनाकार कोई कलाकार थी नहीं।

उसने कॉलेज में आठ साल गुज़ारे। बिना पाँच साल का अण्डरग्रैजुएट कोर्स पूरा किये और डिग्री लिये। फीस मामूली थी और किसी तरह गुज़ारा चलाना मुश्किल न था—हॉस्टल में रहते हुए, विद्यार्थियों के लिए सस्ती दर की मेस में खाना खाते हुए, क्लास में विरले ही हाज़िरी लगाते हुए, इसकी बजाय नक़्शा-नवीस के रूप में आर्किटेक्टों की नीम-अँधेरी फ़र्मों में काम करते हुए, जो अपने प्रारम्भिक नक़्शो के लिए विद्यार्थियों के सस्ते श्रम का शोषण करतीं और जब मामला गड़बड़ा जाता तो दोष उन्हीं के मत्थे मढ़ देतीं। दूसरे छात्र, ख़ासकर लड़के, राहेल के मनमानेपन और महत्वाकांक्षा के घोर अभाव से त्रस्त रहते। उन्होने उसे अकेला छोड दिया था। उसे कभी उनके अच्छे घरों या शोर-गुल-भरी पार्टियों में बुलाया न जाता। यहाँ तक कि उसके अध्यापक भी उसे ले कर किसी हद तक चौकन्ने रहते—सस्ते ख़ाकी काग़ज़ पर प्रस्तुत किये गये, उसके अजीबो-ग़रीब, अव्यावहारिक नक़्शों को ले कर या फिर उनकी आवेग-भरी आलोचना के प्रति उसकी उदासीनता को ले कर।

कभी-कभार वह चाको और मम्माची को पत्र लिखती, लेकिन वह कभी आयमनम नहीं लौटी थी। न तब, जब मम्माची गुज़रीं। न तब, जब चाको ने कनाडा जा बसने का फ़ैसला किया।

अभी वह वास्तुशिल्प महाविद्यालय में ही थी कि उसकी मुलाक़ात लैरी मक्केस्लिन से हुई जो *'देसी वास्तुशिल्प में ऊर्जा के सदुपयोग'* पर अपने शोध-प्रबन्ध के लिए सामग्री जुटाने के लिए दिल्ली में था। पहले-पहल राहेल पर उसका ध्यान कॉलेज पुस्तकालय में गया और फिर कुछ दिन बाद ख़ान मार्केट में। वह जीन्स और एक सफ़ेद टी-शर्ट में थी। एक पुराने पैचवर्क पलँगपोश का टुकड़ा उसके गले के गिर्द बटनों से बँधा था और लबादे की तरह उसके पीछे-पीछे लहरा रहा था। उसके उद्दण्ड केश खींच कर पीछे बँधे हुए थे ताकि वे सीधे नज़र आयें, जो कि वे थे नहीं। एक नथुने पर नन्हा-सा हीरा जगमगा रहा था। उसकी हँसुली की हड्डियाँ बेतुके ढंग से ख़ूबसूरत थीं और चाल धावकों-सरीखी सुन्दर।

वह जा रही है एक जैज़ की धुन, लैरी मक्केस्लिन ने मन-ही-मन कहा, और उसके पीछे-पीछे किताबों की एक दुकान में चला गया जहाँ दोनों में से किसी ने भी किताबों को तवज्जो नहीं दी।

राहेल ने विवाहित जीवन मे कुछ इस तरह भटकते हुए प्रवेश किया जैसे कोई यात्री हवाई अड्डे के लाउंज में एक ख़ाली कुर्सी की तरफ़ भटकता हुआ जाता है। धँस कर बैठने की भावना से। वह लैरी के साथ ही बॉस्टन लौटी।

जब लैरी ने अपनी पत्नी को बाँहों मे लिया, उसके गाल अपनी छाती के साथ लगा कर, तो वह इतना लम्बा था कि उसके सिर के ऊपरी हिस्से को देख सकता था, उसके बालों के काले भँवरजाल को। जब उसने अपनी उँगली उसके होंट के छोर पर रखी, उसे एक नन्ही-सी धड़कन का एहसास हुआ। वह जगह उसे बेहद पसन्द आयी। और वह निहायत हल्की, अनिश्चित फड़कन, ठीक उसकी त्वचा के नीचे। वह उसे छूता रहता, अपनी आँखों से सुनता हुआ, जैसे एक होने वाला बाप अपने अजन्मे बच्चे को माँ की कोख में पैर मारते महसूस करता है।

वह उसे यों बाँहों में लेता मानो वह कोई तोहफा हो। प्यार में उसे दिया हुआ। कोई निश्चल और नन्ही-सी चीज़। असहनीय रूप से क़ीमती।

लेकिन जब वे प्यार करते, उसे उसकी आँखें बेज़ार कर देतीं। उनका रवैया कुछ ऐसा होता मानो वे किसी और की हों। कोई जो निगरानी रख रहा हो। निहार रहा हो खिड़की के बाहर समुद्र को। नदी मे किसी नाव को। या धुन्ध में हेट पहने किसी राहगीर को।

उसे खीझ होती क्योंकि उसे मालूम नहीं था कि उस निगाह का *मतलब* क्या था। उसने उसे उदासीनता और हताशा के बीच कहीं आँका था। उसे पता नहीं था कि कुछ जगहों में, मसलन राहेल जिस देश से आयी थी, हताशा की अलग-अलग क़िस्में अव्वल रहने की होड़ में शरीक रहती थीं। और यह कि *निजी* हताशा कभी इतनी हताश नहीं हो सकती थी। कि जब निजी उथल-पुथल एक राष्ट्र की विशाल, प्रचण्ड, चक्कर-खाती, एड़ लगाती, हास्यास्पद, उन्मत्त, असंगत, सार्वजनिक उथल-पुथल की, सड़क-किनारे बनी, समाधि पर पहुँचती तो कुछ घटित होता। कि वह बड़ा देवता गर्म हवा की तरह गीलापन और सिजदे में गिर झुकाने की माँग करता। तब नन्हा देवता (अपने में मगन, अकेला और सीमित) सुन्न वापस चला आता, अपने दुस्साहस पर स्तब्ध हँसी हँसता

हुआ। अपने मामूलीपन के साबित होने का आदी, वह ढीला पड़ जाता और सचमुच उदासीन बन जाता। किसी भी चीज़ की कोई ख़ास अहमियत नहीं रह जाती थी। किसी ख़ास चीज़ की कोई भी अहमियत नहीं रह जाती थी। और जितना कम उसका महत्व होता, उतना ही कम उसका महत्व होता। उसका कभी इतना महत्व था भी नहीं। क्योंकि इससे ख़राब चीज़ें घट चुकी थीं। हरदम युद्ध के आतंक और शान्ति की भयावहता के बीच टिके हुए जिस देश से वह आयी थी, ख़राब चीज़े लगातार घटित होती रहती थीं।

लिहाज़ा नन्हा देवता एक खोखली हँसी हँसता, और प्रसन्नचित्त फुदकता हुआ चला जाता। निक्कर पहने अमीर बच्चे की तरह। वह सीटी बजाता, पत्थरो को ठोकरें मारता। उसकी बदक़िस्मती का निस्वतन छोटा होना ही उसकी नाजुक-सी खुशी का स्रोत था। वह लोगो की आँखो मे रेंग कर चढ जाता और एक खिझाने वाला भाव बन जाता।

लैरी मक्केस्लिन ने राहेल की आँखों में जो देखा था, वह हताशा क़तई नही थी, बल्कि एक क़िस्म की हठात जगायी गयी आशावादिता थी। और एक शून्य जहाँ एस्ता के शब्द रहे थे। उससे इस बात को समझने की उम्मीद नही की जा सकती थी। कि एक जुडवाँ के भीतर का ख़ालीपन महज़ दूसरे के भीतर की चुप्पी का प्रतिरूप था। कि दोनों चीज़ों में एक तारतम्य था। एक-दूसरे से सटा कर सजाये गये चमचों की तरह। परिचित प्रेमियों के जिस्मों की तरह।

जब दोनों का तलाक हो गया तो राहेल ने कुछ महीनों तक न्यूयॉर्क के एक हिन्दुस्तानी रेस्तरॉ मे बेट्रेस का काम किया। और फिर कई वर्षो तक वॉशिंग्टन के बाहर एक पेट्रोल पम्प के बुलेट-प्रूफ़ कैबिन मे रात के क्लर्क का, जहाँ शराबी कभी-कभार पैसों वाली ट्रे में उलटी कर देते और भड़वे उसे ज़्यादा लाभकारी काम के प्रस्तावों से लुभाने की कोशिश किया करते। दो बार उसने लोगों को उनकी कारों की खिडकियों से गोली मारे जाते देखा। और एक बार एक आदमी, जिसे छुरा मारा गया था, चलती गाड़ी से पीठ में धँसे छुरे के साथ बाहर फेंका गया।

फिर बेबी कॉचम्मा ने पत्र लिख कर बताया कि एस्ता को दोबारा-लौटा दिया गया था। राहेल ने पेट्रोल पम्प की नोकरी छोड़ दी और खुश-खुश अमरीका से चल दी। आयमनम लौटने के लिए। बारिश मे एस्ता के पास।

पहाड़ी पर बने पुराने घर में, बेबी कॉचम्मा डाइनिंग टेबल पर बैठी एक बुढ़ाते खीरे से उसका गाढ़ा, झागदार कड़वापन निकालने के लिए उसे घिस रही थी। उसने एक लुचलुचा, चारख़ानेदार, शीरशक्कर का नाइट गाउन पहना हुआ था, फूली हुई आस्तीनों और हल्दी के पीले दाग़ों वाला। मेज़ के नीचे वह अपने तराशे हुए नाख़ूनों वाले नन्हे पैर हिला रही थी, ऊँची कुर्सी पर बैठे नन्हे बच्चे की तरह। जलोदर की वजह से वे सूजे हुए थे, पैर की शक्ल वाली छोटी, हवा-भरी गद्दियों की तरह। पुराने दिनों में जब कभी कोई आयमनम आता, बेबी कॉचम्मा मुस्तैदी से उसके बड़े-बड़े पैरों की तरफ़ ध्यान दिलाया करती थी। वह उनकी चप्पलें पहन कर देखने की इजाज़त लेती और कहती, 'देखो, ये मेरे लिए कितनी बड़ी हैं।' फिर वह पूरे घर में उन्हे पहन कर घूमती, अपनी साड़ी को थोड़ा-सा ऊपर उठाते हुए ताकि सब उसके नन्हे पैरों पर अचरज कर